।। अथर्व वेदीय ब्रह्मविद्यापरक ऋचा भाष्य ।।

प्रथम किरण

अथर्वा ऋषी वाचस्पतिर्देवता । अनुष्टुप छंद ।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषाम् तन्वो अद्य दधातु ।।

(अथर्व प्रथम काण्ड ।
अध्याय १ ऋचा १)

पदार्थ :- (ये) जो (त्रिषप्ताः) तीन सत्ते इक्कीस शक्ति अर्थात पाँच तत्व, चार अन्तःकरण, दस इन्द्रियाँ, प्राण और आत्मायुक्त (विश्वा) सम्पूर्ण (रूपाणि) स्थावर और जंगम जगत रूपों को अर्थात योनियोंको विभ्रतः) धारण करते हुये (परियन्ति) भ्रमन कर रहे हैं (वाच) वाणीका (पतिः) स्वामी कारण पालक (तेषांम्) उनके अर्थात आत्मा के (बला) प्राकृतिक वा शुद्ध बलोंको (अद्य) आज वा सदैव (मे तन्वः) मेरे मन अर्थात शरीरके अन्दर (दधातु) धारण करें ।।१।।

भावार्थ : पराविद्या योगाभ्यासी पुरूष प्रभुसे प्रार्थना करते हैं, कि हे प्रभो । प्राकृतिक बल और निज शुद्ध आत्मबल मेरे शरीर के अन्दर धारण करें । वा प्रगट करें ।

उपदेशः

१. आत्मा के प्राकृत और शुद्ध इक्कीस बल होते हैं ।
२. आत्मायें अपने अज्ञान, एवं कर्म के पाशमें पशकर सर्व योनियोमें भ्रमती हैं ।
३. सर्व पदार्थ, सर्व ज्ञान, वेदादि सर्व पुस्तकें, सर्व संसार और सर्व धर्म, वाच अर्थात शब्दही है ।
४. वाच अथवा क्षर शब्दोंका कारण स्वामी, और पालक सार शब्द है ।
५. हे वाचस्पतेः । अर्थात सारशब्दः परमपुरूष ।। आप मुझमें दोनों बलों को देने की कृपा करें

(१)आत्मा के प्राकृत और शुद्ध इक्कीस प्रकारके बल होते हैं-

भाष्य : पंचभूत, चार अतःकरण, दश इंद्रियें और प्राण मिलकर बीस होते हैं । इन बीस प्राकृत्तिक पदार्थों में गुरू विधान द्वारा संयम करने से बीस प्रकारके अलौकिक आश्चर्यमय प्राकृतिक बल उस संयमी पुरुष में प्रगट होते हैं । यह शुद्ध आत्मबल नहीं है। पराविद्या योगाभ्यास द्वारा प्रकृति संबंध जब टूट जाता है, और आत्मा जब अपने शुद्ध स्वरूपसे सार शब्द की प्राप्ति के लिये, विहंगम योगाभ्यास एवं अनुभव करने लगता है । उस शुद्ध स्वरूप में जो बल प्रकट होता है , उसे शुद्ध "आत्मबल" कहते हैं ।

यह दोनो मिलकर इक्कीस प्रकार के बल होते हैं । इन बलों को प्रत्यक्ष करना चाहते हों तो सद्गुरू शरण में रहकर योगाभ्यास करो । और जो शास्त्र द्वारा जानना चाहते हो, तो मम रचित "विज्ञान दर्शन" को पढ़ो किन्तु उसमे शुद्ध ही बल की व्याख्या की गयी है।

२) आत्मायें अपने अज्ञान एवं कर्मके पाशमे पशकर सर्व योनियो में भ्रमती हैं ।

आत्मायें सारशब्द को और अपने शुद्ध स्वरूप को तथा बलको भूलकर, अपने आज्ञानसे, नानाकर्म विविध जन्म एवं अनेक योनियोंमें

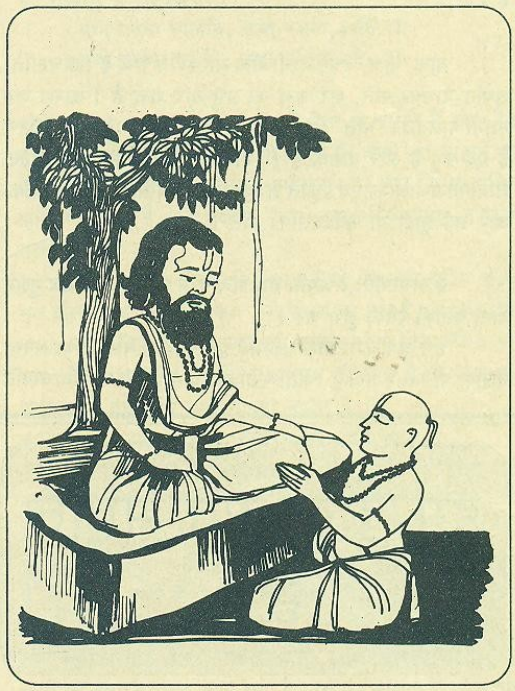

पडकर त्रिविध तापमे तपत्ती हैं । आत्मायें सत्, चित्त स्वरूप एवम् कूटस्थ नित्य होने से अपने शुद्ध स्वरूप को कभी नहीं बदलती क्योंकि वे अज, पुराण सनातन हैं आत्मायें अपने कर्म के वशीभूत होकर जिन जिन योनियोंमे भ्रमती हैं, उन उन योंनियोंके भिन्न भिन्न मायिक देह अपने कर्म वासनाके अनुकूल ही धारण कर उन भाग तथा कर्म क्षेत्रोंमें जाकर प्राप्त होती हैं । अपने शुद्ध में स्वरूप परिवर्तन नहीं होता क्योंकि वे "कूटस्थ" नित्य है । अर्थात भिन्न भिन्न योनियोंके परिवर्तनसे निज शुद्ध स्वरूप मे परिवर्तन नही होता ।

३) सर्व पदार्थ, सर्व ज्ञान, वेदादि सर्व पुस्तकें सर्व संसार और सर्व धर्म वचः अर्थात शब्द ही है ।

सर्व पदार्थ अपने अपने रूपसे पृथक शब्द मे ही व्यक्त होते हैं एवं सर्व पदार्थ वाच अर्थात वाणी शब्द है ।

वेदादि सर्व पुस्तकें अनेक वर्ण समन्वित स्वर-छंद युक्त शब्दमें ही निर्माण होते हैं । अत: यह सर्व ग्रंथ वाच अर्थात वाणी शब्द है। प्रकृतिका परिणाम विकास कार्य स्वरूप अपार संसार का विस्तार भिन्न भिन्न शब्दोंमे ही व्यक्त होते हैं । अत: यह सर्व संसार वाच अर्थात वचन क्षर शब्द ही है । अपने लक्षण युक्त सर्व धर्म वाच अर्थात शब्दमेंही प्रत्यक्ष होते हैं । अत: सर्व धर्म शब्द है । सर्व कारण कार्य नाम रूप जगत एवम् सर्व ज्ञान जेय, ज्ञाता तथा ध्यान, ध्येय, ध्याता और कर्म करण कर्ता यह सर्व वाच शब्द हैं । भाव यह है, कि ५२ अक्षरमें जितने शब्द बनते हैं वे सर्व शब्द क्षर हैं । और वाच हैं।

४) वाच अर्थात क्षर शब्दका कारण स्वामी और पालक सार शब्द है ।

वाक, वाच, वचन वाणी शब्द यह पर्याय शब्द हैं । वाचस्पति: अर्थात वाचका पति, क्षर शब्द का प्रभु-सार शब्द है । कारण जड़ स्वामी पालकको "पति" कहते हैं । सार शब्द प्रत्येक शब्दोंका कारण है एवं प्रभु है और पालक है । भाव यह है कि सार शब्द अनेक जीवरूपी प्रजाओंका एवं प्रकृति क्षेत्रका, तथा सर्व ज्ञान, सर्व ऐश्वर्योंका और सर्व सृष्टी वा सर्व बलोंका पति है ।

५) हे वाचस्पति: । अर्थात सार शब्द परम पुरूष, आप आज मुझमे दोनों बलोंकी देनेकी कृपा करें ।

धर्म अर्थ काम मोक्ष का पति एवं इक्कीस बलोंका वा अनन्त बलोंका पति सार शब्द है । अत: पराविद्या योगाभ्यासी योगी वाचस्पति अर्थात सारशब्द परम पुरूष से प्रार्थना करते हैं, हे वाचस्पति । आप अनन्त ज्ञान, अनन्त ऐश्वर्य, अनन्त शक्ति, एवं अनंत बल संपन्न हैं। मै अपना अनन्य शरण भक्त हूँ । अत: आप आज मुझमें प्राकृत वा शुद्ध दोनो बलोंको देनेकी कृपा प्रदान करें ।

हे विवेकी पुरूषों ! प्रभुकी प्रार्थना दो तरह की होती है । एक प्राकृतिक व दुसरी अध्यात्मिक मन वाणी द्वारा जो प्रार्थना की जाती है, उसको प्राकृतिक बाह्य प्रार्थना कहते हैं । और पराविद्या योगाभ्यास मे शुद्धात्मासे जो प्रार्थना की जाती है, उसको "अध्यात्मिक" प्रार्थना कहते हैं, और अपरोक्ष साक्षात्कारकी प्रार्थना "अध्यात्मिक" है । यह ऋचा अध्यात्मिक प्रार्थनापरक है । क्यों कि इसमे वाचस्पतिसे प्रार्थना है । एवं सारशब्द परमपुरूष के शुद्ध सतत्व अपरोक्ष साक्षात्कारमे यह प्रार्थना है । तत्वार्थ यह है ब्रह्म अखंड चेतन शब्द स्वरूप है । और वह पराविद्या विहंगम योगाभ्यासद्वारा प्राप्त होता है एवं अपरोक्ष साक्षात्कार मे ही उत्तम प्रार्थना होती है और वांच्छित सर्व फल प्राप्त होते हैं । सन्त जन परम पुरूष से भक्तिके सिवा मुक्ति तक भी नही माँगते और इस ऋचा में प्राकृतिक बलोंकी प्रार्थना है ।

अत: यह ऋचा उत्तम संत सिद्धांत के विरूद्ध है । इस पर सन्त जन विचार करेंगे ।

लेखक -
सद्गुरू सदाफल देवजी महाराज
संकलन तथा प्रेषक -
विश्वनाथ पाटील (गडाख) नाशिक

□ □ □